वेद और विदेशी विद्वान् : कृतित्त्व और दृष्टिभेद

ऋषिमेला १९९१ के अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ
एवं परोपकारिणी सभा के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित
वेद-गोष्ठी में पठित निबन्ध
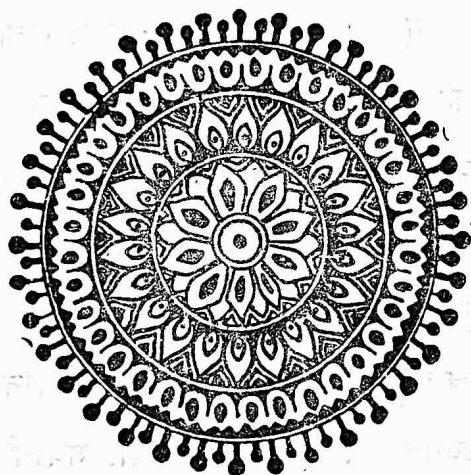
—सम्पादक—
डा. धर्मवीर

—प्रकाशक—
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज
अजमेर

प्रथम संस्करण : १९९२ मूल्य : रु. ३५/-

वेद और विदेशी विद्वान् : कृतित्व और दृष्टिभेद

अनुक्रमणिका

वेद व विदेशी विद्वान्	:	III	:	डा. धर्मवीर
परोपकारिणी सभा : महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ	:	VI	:	—
अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ : एक परिचय	:	VII	:	धर्मवीर
वेद और विदेशी विद्वान्	:	१	:	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती
वेद में मांसभक्षण का कथन	:	३	:	डा. जगदेवसिंह
वेदश्रमी विदेशी विद्वान्	:	८	:	वेदप्रिय शास्त्री
जर्मन वैज्ञानिक प्रो. वाइज के विचार	:	१३	:	डा. कृष्णपालसिंह
जूलियस् एकलिंग की दुरीक्षा	:	२२	:	डा. वेदपाल सुनीथ
विदेशी विदुषां व्याख्यापद्धतेर्विवेचनम्	:	३०	:	डा. ब्रह्मानन्द शर्मा
मैक्समूलर और उनका वैदिक अध्ययन	:	३२	:	प्रो. भवानीलाल भारतीय
विदेशी विद्वानों के आक्षेपों का निराकरण	:	४०	:	रामस्वरूप
जानबूझकर वेदों के मिथ्यार्थ क्यों ?	:	४२	:	स्वामी विद्यानन्द
वेदों में रामकथा: एक भ्रान्त धारणा	:	४६	:	डा. सुरेन्द्रकुमार
वेद और मैक्समूलर	:	५२	:	वीरेन्द्र सरस्वती
भारतीय और विदेशी विद्वान्	:	५६	:	अनन्त शर्मा
वेद और विदेशी विद्वान्	:	७०	:	धर्मसिंह कोठारी
वेद और विदेशी विद्वान्	:	७३	:	पीताम्बरलाल शर्मा
वैदिक वाङ्.मय पर पाश्चात्यों का श्रम और हम	:	७६	:	सन्तोष 'कण्व'
अध्यक्षीय भाषण का सार	:	८१	:	वैद्य पं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
'ट्रायड्ज़ इन द वेद' की समीक्षा	:	८८	:	डा. कृष्णलाल

———

वेद व विदेशी विद्वान्

भारतीय मनीषा के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में वेद का ज्ञान और वेद की भाषा मनुष्य को प्राप्त हुई। कालान्तर से इस में विभेद होता गया। इस विभेद का कारण देशगत एवं कालगत दूरी रही जिस का आज भी अनुभव किया जा सकता है। पाश्चात्य कथानक में भाषा विभेद ईश्वर ने किया है जब कि भारतीय अनुसन्धान भाषा भेद को मनुष्यकृत मानता है। भाषा गत दूरी से समाज में वैचारिक और सांस्कृतिक दूरियों का जन्म हुआ है। इस भाषागत दूरी के मूल में जाने का यत्न किया गया तो विद्वानों को भाषाओं में परस्पर समानता का बोध हुआ जिससे यह प्रतीति होना स्वाभाविक है कि इन प्रचलित भाषाओं का मूल कहीं एक है और प्राचीनतम है। वर्तमान में वेद की भाषा प्राचीनतम है। अत: उससे भाषाओं में समानता प्रतीत हो यह स्वाभाविक है। इसी जिज्ञासा ने वेद के अध्ययन के लिये विद्वानों को प्रेरित किया। यह संयोग है अध्ययनकर्त्ताओं में अनेक विद्वान सत्तापक्ष से सम्बद्ध थे और उनका दृष्टिकोण भी सत्तासमर्थक रहा है पुनरपि सभी विद्वानों के साथ यह बात नहीं घटती? सरस्वती का समाराधन प्रज्ञा का प्राकृतिक व्यापार है अत: यह देश काल जाति आदि के बन्धनों की परवाह नहीं करता। इस प्रकार के उपासकों ने जो अध्ययन प्रस्तुत किया है उसका मूल्यांकन करते हुए एतत् सम्बन्धी पक्षपात एवं पूर्वाग्रह से मुक्त रहना चाहिए। इस प्रस्तुत प्रयास में मान्य लेखकों ने इसका निर्वहण करने का यत्न किया है तथा जहां पाश्चात्य विद्वानों पर दुराग्रह एवं पक्षपात का आरोप लगाया है उसके पक्ष में प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं।

आर्ष सिद्धान्त और मान्यताओं के विरोध के लिये पाश्चात्य विद्वान् अकेले दोषी नहीं हैं, इसके लिये मध्यकाल के वेद के भाष्यकार एव कर्मकाण्ड के विद्वान् मुख्यत: दोषी हैं जिन्होंने वेद को इच्छानुसार मोड़ने का प्रयत्न किया है। यदि पाश्चत्य लोग इसे प्रमाण मानकर अपने विचार को पुष्ट करने का यत्न करते हैं तो उन्हें यह अधिकार हमारे द्वारा प्राप्त है। मध्यकाल के सारे कथन आर्ष सिद्धान्त की कसौटी पर निराकृत हो जाते हैं यदि हम वेद को एक वाक्यता गुण से युक्त मानते हैं। वेद के विषय में जितना अध्ययन हुआ है और हो रहा है उसमें नाना प्रकार की चर्चाओं को दिखाने का यत्न किया जाता है परन्तु इस चर्चा में परस्पर विरोध प्रतिपादित होता है तो सारी चर्चा ही निरर्थक हो जाती है। यदि वेद बुद्धिपूर्वा वाक्यकृति है तो एक मनुष्य के कथन में विविधतागत अनेकता हो सकती है परन्तु विरोधजन्य भिन्नता स्वीकार्य नहीं हो सकती। उदाहरण के लिये वेद मांस खाने का विधान है या नहीं? यदि दोनों कथन उपलब्ध होते हैं तो ये कथन अप्रमाण होने से अमान्य हो जायेंगे। इन दोनों बातों में इन्द्रिय आकर्षण, लोलुपता से मांसाहार गृहीत हो सकता है परन्तु विचार से मांसाहार का पक्ष हेय होने से निराकृत हो जाता है। अत: यह कहना वेद में दोनों कथन मिलते हैं यह विचार मूर्खतापूर्ण सिद्ध होता है?

वेद का व्याख्यान करते हुए दो तरह के प्रमाण और प्रस्तुत किये जाते हैं एक ऐतिहासिक और मनुष्य की रुचि एवं व्यवहार के उदाहरण। ये दोनों पक्ष प्रस्तुत करते हुए जो बात कहते हैं वह ठीक लगने पर भी सर्वथा सत्य नहीं होती। विचार किया जाय तो आज के युग को विकसित कहेंगे या अविकसित, सभ्य अथवा असभ्य। कहने को सभ्य कहेंगे क्योंकि प्रगति का अगला छोर जहां पहुच गया है वह इस युग उपलब्धिका सूचक है परन्तु असभ्यता का साम्राज्य उस धरती पर आज भी विद्यमान है इससे कौन इन्कार कर सकता है। ग्रह उपग्रहों में जाने वाले यानों का अस्तित्व है परन्तु बैलगाडी या भैंसागाडी का; मनुष्यों द्वारा खींची जाने वाली गाडी का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ है। यदि विचार करके आने वाले समय

के परिप्रेक्ष्य में इसका मूल्यांकन करें तो बैलगाडी के उदाहरण से अविकसित कहेंगे अथवा उपग्रह के कारण विकसित। स्थान भेद से, परम्परा, इच्छा, आवश्यकता सामर्थ्य ऐसे बहुत सारे बिन्दु हो सकते हैं जिनसे विभेद संभव है तब कहना पड़ेगा यदि उपग्रह विकास का मानदण्ड है तो यह युग विकसित है। यही दृष्टि पुरातन काल के विवेचन में रखनी होगी। अतः विकास के चरम को प्रस्तुत करते हुए परिणाम का आकलन निम्न कोटि के उदाहरणों से नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार कुछ लोग यह कहकर वैदिक सभ्यता का मूल्यांकन करते हैं वेद में जुए और चोरी का उल्लेख है अतः सभ्य समाज से दूर है। ऐसा कथन अनर्गल प्रलाप है। संसार में सदा ही सब कुछ रहा है, बीज सड़ता भी है उगता भी है। मनुष्य की भावना अच्छी और बुरी अपेक्षा से हैं। समाज में बुद्धि के अनुसार कार्य होता है, तब उचित होता है और जब आवेग व भावना से होता है तब अनुचित। मनुष्य सदा ही समस्त संवेगों के साथ ही रहेगा। उसके अच्छा या बुरा होने का आकलन उसके बौद्धिक विवेचन और प्रस्तुत कार्य से होगा न कि भावनाओं के अस्तित्व से। यदि चोरी न करने का उपदेश है तो चोरी का अस्तित्व भी है। अतः ये विचार वेद के काल और समाज के चित्रण के लिये पर्याप्त आधार नहीं हैं। यह चित्रण सदा सर्वत्र सम्भव हैं इसलिये वेद के विचार को देशकाल की सीमा से बांधना अनुचित है। फिर वेद में सगोत्र विवाह, व्यभिचार, भ्रूण हत्या का उल्लेख है अतः वेद कब का है यह सिद्ध करना तब सम्भव होगा जब यह सब इस समाज में यह बिल्कुल भी नहीं रहा होगा और ऐसा समय इस धरा पर न कभी था न होगा।

इस प्रकार वेद का अध्ययन करते हुए औचित्य पूर्ण दृष्टि रखनी होगी तभी समाज के लिए लाभकर विचार दिये जा सकते हैं।

जिस प्रकार सप्तसिन्धु सूक्त की व्याख्या करते हुए पाश्चात्य और उनके अनुयायी विद्वानों ने सिन्धु शब्द देखकर कल्पना कर डाली वेद की ऋचायें सिन्धु नदी का वर्णन करती हैं। गंगा का वर्णन करती हैं, यमुना का वर्णन करती हैं, इस आधार पर अपने निष्कर्ष भी प्रस्तुत कर दिये आर्य या वैदिक लोग सिन्धु से गंगा तक पहुंचे। इस विचार में भारत आने की दिशा पश्चिम से पूर्व तथा स्थान के विवरण की दिशा पूर्व से पश्चिम इस समस्या का समाधान करने का उन्हें अवकाश नहीं मिला।

किसी बात की प्रामाणिकता अन्तः साक्षी और बाह्य प्रमाणों पर निर्भर करती है। पाश्चात्य विद्वान् दूसरे मन्त्रों से अपने निर्णयों को पुष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। बाह्य प्रमाण वेदाधारित ग्रन्थों एवं परम्पराओं पर निर्भर करते हैं, इन दोनों से पाश्चात्य विद्वानों का परिचय कम हो यह स्वाभाविक है। जब यहाँ की परम्परा इस देश में ही उपलब्ध नहीं रही तो बाहर के व्यक्ति से उसके परिचय की अपेक्षा नहीं की जा सकती परन्तु निष्कर्ष उसके बिना स्वीकार्य भी नहीं हो सकते। कल्पना और बुद्धि को छूट देने पर मन्त्रों का अर्थ अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा किया जा सकता है परन्तु उससे वेद के होने का अर्थ शेष नहीं रह सकेगा। वेद बना इस धरती के लोगों के लिए, मिला इन लोगों को, उससे उन्होंने जो लाभ उठाया वही वेद का वेदत्व है। उसको पकड़ पाना ही अनुसन्धान है। लक्ष्य से हट कर किया गया अनुसन्धान वेद के स्वरूप का प्रकाशक नहीं हो सकता अतः प्रसंग व परम्परा को ध्यान में रख कर समग्र दृष्टि से अवलोकन करना अपेक्षित है तब निश्चय ही वेद का प्रकाश हमारी आत्मा को आलोकित कर सकता है। इसी अवधारणा को धारण करके विद्वानों ने यहाँ विचार प्रस्तुत किये हैं।

पुरस्कृत निबन्ध

गत वर्ष की वेदगोष्ठी के निबन्ध 'वेद और विदेशी विद्वान्' शीर्षक से पढ़े जाकर प्रकाशित हुए। गत वर्ष निश्चय किया गया था उत्कृष्ट निबन्धों को पुरस्कृत किया जाए जिससे अच्छे लेखन को प्रोत्साहन मिले, विशेषकर नई पीढ़ी के लेखक अपने परिश्रम को शास्त्रीय दिशा दे सकें। इस कार्य के मूल्यांकन के लिए निबन्ध डॉ. रामनाथजी वेदालंकार हरिद्वार, श्री पं. मनोहरजी

विद्यालंकार दिल्ली, तथा श्री पं. राजवीरजी शास्त्री सम्पादक दयानन्द सन्देश दिल्ली को भेजे गये और उन्होने परीक्षण कर सभी निबन्धों की प्रशंसा करते हुए अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ निबन्धों का चयन किया। यह बात निबन्धों की उत्कृष्टता का प्रमाण ही कही जायेगी कि अधिकांश निर्णय परस्पर भिन्न रहे और सभा ने यह उचित समझा जितने भी निबन्ध पुरस्कार की कोटि में आते हैं सभी को पुरस्कृत किया जाय।

पुरस्कार की कुल राशि एक हजार रुपये थी परन्तु दयानन्द वेदपीठ के मन्त्री श्री सत्यानन्दजी आर्य ने यह राशि प्रथम पुरस्कार के रूप में प्रत्येक को २५१ रु. द्वितीय २०१ रु. तथा तृतीय को १५१ रु. देने की घोषणा की। इन निबन्धों का वरीयताक्रम मान्य विद्वानों की दृष्टि में इस प्रकार रहा—

प्रथम—

१. वैदिक वाङ्मय पर पाश्चात्यों का श्रम और हम —**श्री सन्तोष 'कण्व'**

२. प्रो. मैक्समूलर और उनका वैदिक अध्ययन —**डॉ. भवानीलाल भारतीय**

३. वेद के युग युगीन प्रणाश तथा उद्धार के चक्रनेमि क्रम में वर्तमान भारतीय व विदेशी विद्वान् —**श्री अनन्त शर्मा**

द्वितीय—

१. वेद और विदेशी ईसाई मैक्समूलर —**श्री वीरेन्द्र मुनि**

२. शतपथ ब्राह्मण के अनुवाद का जूलियस एगलिंग की दुरीक्षा —**डॉ. वेदपाल सुनीथ**

३. जर्मन वैज्ञानिक प्रो. जी. वाइज तथा महर्षि दयानन्द का विचार विमर्श —**डॉ. कृष्णपालसिंह**

४. वेदों में राम कथा : एक भ्रान्त एवं हास्यास्पद धारणा —**डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

तृतीय—

१. जान बूझकर मिथ्यार्थ क्यों —**स्वामी विद्यानन्द सरस्वती**

विद्वानों ने सभी लेखों को उपयोगी व ज्ञानवर्धक बताते हुए सभी विदेशी विद्वानों की धारणा पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं अतः सभी विद्वानों के लिए आदरसूचक शब्दों का प्रयोग लेखकों को करना चाहिए—ऐसा मत प्रकाशित किया है। विशेष रूप से डॉ. रामनाथ वेदालंकार की टिप्पणी उल्लेखनीय और प्रेरणादायक है—

'विगत वेदगोष्ठी के आप द्वारा प्रेषित शोधपत्रों को मैंने ध्यान से पढ़ा है, शोध पत्र परिश्रमपूर्वक लिखे गये हैं। लेखकों ने शोध गोष्ठी को सफल बनाया एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

लेख क्योंकि छात्रों के न होकर विद्वानों के हैं, इसलिए उन पर पृथक्-पृथक् टिप्पणी करना उचित नहीं होगा, इतना अवश्य कहना है कि आर्यसमाज के शिखरासीन विद्वान् यदि यह मानते हैं कि मैक्समूलर, जूलियस एगलिंग प्रभृति विदेशी विद्वानों ने वैदिक साहित्य सम्बन्धी कार्य इस हेतु से किया कि वैदिक धर्म की निकृष्टता एवं ईसाई धर्म की उत्कृष्टता सिद्ध हो सके तथा इसे पढ़कर भारतीय लोग ईसाई बनें, तो यह चिन्ताजनक स्थिति है। स्वयं विदेशी विद्वानों ने तो अपने पत्रों या ग्रन्थों में यह इसलिए लिखा है कि उनके कार्य का ईसाइयों की दृष्टि में औचित्य सिद्ध हो तथा उन्हें सम्मान, आर्थिक सहायता, प्रकाशन आदि प्राप्त होता रहे। इस विषय में आप द्वारा भेजे गये लेखों में प्रथम आशीर्वादात्मक लेख हमारा अच्छा मार्गदर्शन करता है। अतः व्यक्तिगत आक्षेप न करके हमें उन मान्यताओं पर सप्रमाण विचार करना चाहिए जो असंगत हों। उनके कार्य का मूल्यांकन करते हुए उनकी असावधानियों, त्रुटियों, भ्रान्त कल्पनाओं एवं अशुद्ध व्याख्यानों पर ही हमें प्रहार करना चाहिए।'

इस प्रकार इस वेदगोष्ठी को सफलता और जो मार्गदर्शन मान्य समालोचकों का मिला उसके लिए हम श्रद्धावनत हैं और जिन विद्वानों के परिश्रम ने यज्ञ के लिए जो अपनी निष्ठा व योग्यतापूर्ण हवि प्रदान की उसके लिए हम उनके आभारी हैं। हमें विश्वास है उनके इस पवित्र स्नेह पर हमारा अधिकार बना रहेगा।

—**धर्मवीर**

प्रो. मैक्समूलर और उनका वैदिक अध्ययन

□ प्रो. भवानीलाल भारतीय

पाश्चात्य विद्वानों में जितनी ख्याति, प्रसिद्धि और श्लाघा प्रो. मैक्समूलर को मिली उतनी सम्भवत: अन्य किसी संस्कृत अध्येता को नहीं मिल सकी। यहाँ हम किंचित् विस्तार में जाकर प्रो. मैक्समूलर की संस्कृत और वैदिक साहित्य के प्रति अवधारणा तथा उनके इस प्राच्य अध्ययन के मूल में निहित दृष्टि की जानकारी लेने का प्रयास करेंगे। किन्तु ऐसा करने से पूर्व उनके जीवन की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

प्रो. मैक्समूलर का जीवन वृत्तान्त

जर्मनी के डेसाऊ नगर में फ्रेडरिक मक्समयुलर (जर्मन उच्चारण) का जन्म १८२३ में विल्लेल्म म्युलर के यहाँ हुआ। उनकी माता का नाम अडेलहीड था जो जर्मनी के एक छोटे से राज्य अनहाल्टे डेसाऊ के प्रधान मंत्री की पुत्री थी। प्रारम्भ में अपने नगर में ही लैटिन और ग्रीक भाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् १८४१ में उन्होंने लीपजिग विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। यहाँ तब तक संस्कृत विभाग की स्थापना हो चुकी थी। संस्कृत भाषा की श्रेष्ठता और उसके साहित्य की गरिमा को अनुभव कर मैक्समूलर को लैटिन और ग्रीक के क्लासिकल साहित्य से विरक्ति हो गई और इस विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफेसर ब्रोकहाउस के मार्गदर्शन में उन्होंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया। आरम्भ में उनका अध्ययन कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' तथा ऋग्वेद के कुछ अंश तक सीमित रहा। २० वर्ष की आयु में उन्होंने "हितोपदेश" का जर्मन अनुवाद किया। १८४३ में दर्शनशास्त्र में डाक्टरेट करने के पश्चात् उन्होंने विज्ञान और दर्शनशास्त्र विषयक अपने अध्ययन को जारी रखने के लिये १८४४ में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। यहाँ तुलनात्मक भाषा विज्ञान के संस्थापक फ्रात्ज बॉप तथा दार्शनिक फ्रीडरिश फान शेलिंग के मार्गदर्शन में कार्य किया।

प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने तथा संस्कृत के मूल ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ एकत्र करने के सिलसिले में वे १८४६ में इंग्लैण्ड गये और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रथम बॉडेन प्रोफेसर एच. एच. विल्सन ने उनकी इस कार्य में सहायता की। विल्सन की सिफारिश से ही १८४८ में उनकी नियुक्ति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई जहाँ रह कर उन्होंने १८४९-१८७४ की अवधि में छ: खण्डों में ऋग्वेद के संस्करण का सम्पादन और प्रकाशन किया। मैक्समूलर का अवशिष्ट जीवन भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, भाषाविज्ञान जैसे विषयों के अध्ययन, अध्यापन, चिन्तन और लेखन में ही व्यतीत हुआ। भारत विषयक उनके प्रशंसापूर्ण उद्‌गार India : What it can teach us ? नामक पुस्तक में उल्लिखित हैं। १९०० में इस प्राच्य विद्याविद् का देहान्त हो गया। वे स्वामी दयानन्द से आयु में एक वर्ष बड़े थे।

मैक्समूलर के प्राच्य विद्या और विशेषत: संस्कृत अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में उनके धार्मिक विश्वासों और विशेषत: ईसाई मत के प्रति उनकी कट्टर आस्था तथा संस्कृत एवं वेदों के अध्ययन के पीछे उनके कतिपय प्रच्छन्न पूर्वाग्रहों का विवेचन और अनुशीलन आवश्यक है। इस प्रसंग में भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रवर्तक टी. बी. मैकॉले और प्रो. मैक्समूलर के पारस्परिक सम्बन्धों और विचार विनिमय की चर्चा करनी अत्यन्त आवश्यक है। लॉर्ड मैकाले (पूरा नाम

थामस बेबिंगटन मैकाले) को अंग्रेजी समाज एक इतिहासकार, निबन्धकार तथा राजनीतिज्ञ के रूप में जानता है। उसकी शिक्षा-दीक्षा एक कट्टर ईसाई सम्प्रदाय के अनुयायी के रूप में हुई थी। १८३४ में वह भारत के गर्वनर जनरल की कौंसिल के कानूनी सलाहकार के रूप में भारत आया और चार वर्ष तक यहाँ रहा। १८३९ में वह इंग्लैण्ड लौट गया और वहाँ की संसद् का सदस्य चुन लिया गया। उसने भारत की शिक्षा नीति का निर्धारण किया और इसके पीछे निहित अपनी भावना को व्यक्त करते हुए १२ अक्टूबर १८३६ को अपने पिता को कलकत्ता से जो पत्र लिखा उसमें यह विश्वास प्रकट किया गया था कि—"जो हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर लेगा वह अपने धर्म के साथ कभी भी जुड़ा नहीं रहेगा, कुछ लोग तो केवल कहने भर के लिये अपने को हिन्दू कहेंगे, अन्य ईसाई बन जायेंगे।" उसने यहाँ तक लिखा कि "यदि हमारी शिक्षा विषयक योजना को चालू रक्खा गया तो आने वाले तीस वर्षों में बंगाल की कुलीन जातियों में कोई भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं बचेगा।"

मैकॉले और मैक्समूलर की भेंट २८ दिसम्बर १८५५ को हुई। इस भेंट में मैकॉले ने मैक्समूलर को प्रेरणा देते हुए कहा कि वह संस्कृत साहित्य में निहित तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करे जिससे भारत में ईसाई मत का प्रचार एवं उत्कर्ष हो, तथा वहाँ के पुरातन हिन्दू धर्म और तत्सम्बद्ध आस्थाओं को त्याग कर अधिकांश भारतवासी ईसाइयत को स्वीकार करलें। यह कहना तो उचित नहीं है कि जिस समय मैक्समूलर ने संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया था, तभी उसका ध्येय और विचार इसके द्वारा वेदादि संस्कृतशास्त्रों की दूषित तथा भ्रामक व्याख्या कर उसके प्रति पाठक वर्ग की विरक्ति उत्पन्न करना रहा था। निश्चय ही विद्याव्यासंग और भारतीय वाङ्मय एवं चिन्तन के प्रति उसके लगाव ने एक निष्पक्ष अध्येता तथा अनुसंधित्सु के रूप में ही उसे इस क्षेत्र में प्रवेश कराया था। किन्तु वह मैकाले द्वारा दिये गये धन, वैभव, प्रतिष्ठा और ख्याति के प्रलोभनों से स्वयं असंपृक्त नहीं रह सका और उसने कूट चातुरी वाले मैकाले के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। अब उसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा पूरा संरक्षण तथा आर्थिक सहायता दी जाने लगी। इसका प्रयोजन इतना मात्र ही था कि वह ऑक्सफोर्ड की इस गद्दी पर बैठ कर प्रच्छन्न रूप से ईसाइयत के प्रचार प्रसार में सहायक बने। कारण कि इस बॉडन चेयर के संस्थापक कर्नल बॉडन ने १५ अगस्त १८११ को लिखी अपनी वसीयत में इस चेयर की स्थापना के पीछे निहित उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट कर दिया था—

"The special object of the munificent begust was to promote the translations of scriptures into Sanskrit, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion."

अर्थात् इस कार्य का मुख्य उद्देश्य ईसाई शास्त्रों का संस्कृत अनुवाद तैयार करवाना है, जिसकी सहायता से मेरे देशवासी भारतवासियों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के कार्य में अग्रसर हों।

मैक्समूलर की ईसाइयत के प्रति अनुरक्ति कोई छिपा तथ्य नहीं है। उसने यह बात भी खुल कर स्वीकार की है कि भारतीय वाङ्मय तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन, व्याख्या और अनुवाद के पीछे भी उसकी ईसाई धर्म प्रचारक की मनोवृत्ति सदा से कार्यशील रही है। यहाँ कतिपय उदाहरणों तथा प्रमाणों से मैक्समूलर की उपर्युक्त धारणा को सिद्ध किया जाना आवश्यक है—

१८६६ में अपनी पत्नी के नाम लिखे पत्र में उसने स्वीकार किया कि "मेरा ऋग्वेद का संस्करण और अनुवाद भारत के भाग्य को निश्चित रूप से प्रभावित करेगा। यह वेद ही भारतवासियों का

मूल धर्म है तथा इस मूल से शाखा-प्रशाखा रूप जो भारतीय धर्म रूपी महाविटप गत तीन हजार वर्षों से फैला फूला है, उसे नष्ट करने के लिये भारतवासियों को यह भी बनाना आवश्यक है कि उनके वर्तमान धर्म का मूल यह वेद कैसा है ?" अब उसने हिन्दू धर्म को भारत की भूमि से जड़ से उखाड़ फेंकने का पक्का इरादा कर लिया तथा उसके स्थान पर ईसाइयत के बिरवे को रोप कर उसे पुष्पित और पल्लवित करने का उसका पक्का इरादा था। ड्यूक ऑफ आर्गाइल (तत्कालीन भारत मंत्री) को १६ दिसम्बर १८६८ को लिखे अपने पत्र में उसने स्पष्ट कहा— "भारत का प्राचीन धर्म अब मरणोन्मुखी है और ईसाइयत यदि उसका स्थान लेने के लिये आगे नहीं आती है तो इसमें किसका दोष होगा।" किन्तु यह भी सत्य है कि न तो ३० वर्षों के भीतर बंगाल से हिन्दुओं को उन्मूलित करने की मैकाले की भविष्यवाणी और न मैक्समूलर का यह विश्वास ही सत्य सिद्ध हुआ कि भारत का धर्म मृतप्राय: हो चुका है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि १८५५ में लार्ड पामर्स्टन इंलैण्ड का प्रधानमंत्री बना था। इसने भी अपने इस विश्वास को खुले तौर पर प्रकट कर दिया था कि भारत में ईसाइयत का प्रचार करना ही ब्रिटेन का एक मात्र लक्ष्य है। १८५५ में ही मैकाले की मैक्समूलर से भेंट हुई थी जिसमें उस कूटनीतिज्ञ ने इस संस्कृत विद्वान् को हिन्दू शास्त्रों की विकृत, त्रुटिपूर्ण तथा पूर्वाग्रह युक्त व्याख्या कर भारत में ईसाइयत के भविष्य को प्रशस्त करने का आग्रह किया और उसके इस सुझाव को उस युवा जर्मन विद्वान् ने अपनी लौकिक उन्नति और ख्याति के लालच में स्वीकार भी कर लिया था।

मैं मैक्समूलर की एक अन्य दुष्टतापूर्ण प्रवृत्ति की ओर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। विगत शताब्दी में ही कुछ ऐसे फ्रांसीसी तथा जर्मन दार्शनिक और विचारक हुए हैं, जिन्होंने पूर्ण ईमानदारी के साथ भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा जीवन पद्धति की उत्कृष्टता तथा उदात्तता को स्वीकार किया था। उनके द्वारा किये गये भारत के तत्व चिंतन के इस प्रशस्तिपाठ को सहन करना मैक्समूलर जैसे कट्टर ईसाई के लिये सम्भव ही नहीं था। अत: उसने यत्र तत्र उक्त कोटि के यूरोपीय विद्वानों के विचारों की निराधार आलोचना की।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् लुई जेकालियट ने अपने ग्रन्थ La Bible dans L' Inde (Bible in India) में भारत की गरिमा का भावस्फूर्त वर्णन करते हुए उसको Cradle of Humanity तथा Land of Love कहा। भारत की इस प्रशंसा को मैक्समूलर के लिए सहन करना कठिन था। उसने जैकालियट के इस उद्गार पर टीका करते हुए लिखा—

"The author seems to have been taken in by the Brahmins in India."

लेखक, ऐसा लगता है, भारत के ब्राह्मणों के प्रभाव में आकर बह गया है।

जब जर्मन दार्शनिक शॉपनहार ने उपनिषदों में निहित ब्रह्म विद्या की प्रशस्ति में अपने सम्पूर्ण अभिव्यंजना कौशल को ही समाप्त कर दिया और यह आशा प्रकट की कि एक दिन आयेगा जब भारत की प्रज्ञा का प्रवाह पुन: यूरोप की ओर मुड़ेगा तथा हम यूरोपवासियों के ज्ञान और चिन्तन में सम्पूर्ण परिवर्तन लायेगा—

Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowledge and thinking.

तो ईसाइयत के अन्धविश्वासी मैक्समूलर ने उक्त कथन का उपहास करते हुए लिखा—"मुझे लगता है कि यहाँ भी यह महान् दार्शनिक (शॉपनहार) धोखा खा गया और अपने अत्यधिक उत्साह के कारण एक गौण वस्तु को प्रधानता दे बैठा। वह उपनिषदों के कृष्ण पक्ष की ओर से आँखें मूँदे हुए है और ईसाई गॉस्पेल में निहित शाश्वत सत्य

की प्रकाशमान् किरणों से अपने को जानबूझकर अनजान बनाये हुए है।

"Here again the great philosopher seems to me to have allowed himelf to be carried away too far by his enthusiasm for the less known. He is blind to the dark side or the Upanishads and he willfully shuts his eyes against the bright rays of eternal truths in the (Christian) Gospel."

वेदों के अध्ययन का मैक्समूलर का प्रयास कितना छिछला, अविवेकपूर्ण, वैदिक अध्ययन की ऐतिहासिक और सर्वमान्य प्रक्रियाओं की उपेक्षा और अवहेलना करता हुआ तथा पदे पदे ईसाई विश्वासों की सत्यता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्वीकार करने के कारण पूर्वाग्रहपूर्ण तथा अविश्वसनीय बन गया है, यह तो हम आगे चल कर देखेंगे। यहाँ तो हम यह बताना चाहते हैं कि जब १८७७ में ऋषि दयानन्द द्वारा वेदों की भाष्य-रचना की बात मैक्समूलर को ज्ञात हुई और श्री महाराज कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा मासिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने वाले ऋग्वेद के भाष्य का वह नियमित ग्राहक बना तो उसने अनुभव किया कि यदि निकट भविष्य में दयानन्द सरस्वती का यह वेदभाष्य सारस्वत समाज में आदर प्राप्त कर लेता है और इसके कारण मध्यकाल में लुप्त हुई वेदों की गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो जाती है तो वेदों को कलुषित, गर्हित, बालिश तथा अनेक विडम्बनाओं से युक्त सिद्ध करने का उसका यह पक्षपातपूर्ण प्रयास निरर्थक हो जायेगा। फलतः उसने स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य पद्धति का विरोध करने की ठानी। एक पारसी सुधारक बहरामजी मलाबारी के नाम २९ जनवरी १८८२ के अपने पत्र में उसने लिखा—

"इस पुरातन धर्म का वास्तविक और ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व क्या है, यह मैं उन लोगों को बता देना चाहता हूँ जो इसके बारे में एक यूरोपियन या ईसाई के एकान्तिक दृष्टिकोण से नहीं, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से जानना चाहते हैं। मैं वैदिक अध्ययन को उत्पन्न दो खतरों से ऐसे लोगों को सावधान करना चाहता हूँ। एक खतरा तो उन आधे यूरोपीय बने नौजवानों की ओर से है जो भारत के इस प्राचीन राष्ट्रीय धर्म (वेद प्रतिपादित धर्म) का अवमूल्यन करने पर तुले हैं। यहाँ तक तो मैक्समूलर का कथन ठीक ही है। किन्तु, "मैं दयानन्द सरस्वती द्वारा वेदों का अत्यधिक महत्त्व आँकने के प्रयास को भी अच्छा नहीं समझता जिसमें वे वेदों से उन बातों को सिद्ध करते हैं जो वस्तुतः उनमें हैं ही नहीं।" मैक्समूलर का अभिप्राय: स्वामी दयानन्द का वेदों को सर्व विद्याओं (आध्यात्मिक तथा भौतिक) का मूल घोषित करने से है। इस आपत्ति को प्रकट करते हुए वह यह भूल जाता है कि वेदों का सर्वविद्यामयत्व अकेले दयानन्द का ही मन्तव्य नहीं रहा। सभी प्राचीन और अनेक अर्वाचीन वेदचिन्तकों ने वेदों के समस्त ज्ञान विज्ञान का मूलाधार होने को स्वीकार किया है।

मैक्समूलर की दयानन्द विषयक इस कटूक्ति के पीछे जो तथ्य छिपा है, वह तो स्पष्ट ही है। स्वामी दयानन्द ने भी विलसन, मैक्समूलर आदि के वेद विषयक कार्य को सूक्ष्मेक्षिका से देख लिया था और अपनी वेदभाष्यभूमिका में तो उनके वेदार्थ पर यत्र तत्र टिप्पणियाँ की हीं, सत्यार्थप्रकाश में तो स्पष्ट ही लिख दिया—"जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र है, क्योंकि 'यस्मिन्देशे द्रुमोनास्ति तत्रैरण्डोऽपि-द्रुमायते।' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं।"

प्रो. मैक्समूलर और वेद

मैक्समूलर को यह तो स्वीकार करना ही पड़ा था कि आर्य जाति में वेद ही प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और शताब्दियों से उसे जिस प्रकार पूर्ण सुरक्षित रक्खा गया है, वह किसी आश्चर्य से कम नहीं है—

In the Aryan World, Veda is certainly the oldest book and its preservation amounts to a marvel. (What is the Veda).

मैक्समूलर इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं था कि भारतीय परम्परा में वेदों को ईश्वर प्रदत्त समझा जाता है तथा इस अपौरूषेयता के सिद्धान्त की जितनी सूक्ष्मता और गहराई से भारत में समीक्षा की गई है, वैसा अन्य देशों में स्वीकृत ईश्वरीय ज्ञान समझे जाने वाले ग्रन्थों के लिये कभी नहीं हुआ—

"In no country, I believe, has the theory of revelation been so minutely discussed and elaborated as in India."

तथापि वेद के अपौरूषेयत्व की भारतीय परम्परा को अस्वीकार करते हुए मैक्समूलर इस बात को कहे बिना रहता नहीं कि वैदिक सूक्तों के रचयिता कुछ ऋषि (मनुष्य) या उनके मित्र ही थे, जिन्होंने देवताओं को प्रसन्न करने के लिये इन मन्त्रों की रचना उसी प्रकार की, जैसे कोई बढ़ई रथ बनाता है—

In many a hymn the author says plainly that he or his friend made it to please the gods, that he made it as a carpenter makes a chariot.

मैक्समूलर ने वेदों का मनुष्य कर्तृत्व इतनी सरलता से तो घोषित कर दिया, किन्तु उसे न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित वेदों के ईश्वर कर्तृत्व एवं अपौरूषेयत्व की सिद्धि में दिये गये प्रमाणों की इतने सहज भाव से उपेक्षा नहीं करनी चाहिये थी।

वेदों के आविर्भावकाल के विषय में मैक्समूलर ने जो विचार रक्खे हैं उन्हें कालान्तर में कोई भी वैदिक अध्येता स्वीकार नहीं कर सका। उसने वेद काल निर्णय के लिये जो युक्ति शृंखला आविष्कृत की, वह नितान्त हास्यास्पद और अविश्वसनीय सिद्ध हुई। वह यह तो मानकर चला कि वैदिक साहित्य निश्चय ही बुद्ध पूर्व का है। अब वह वैदिक साहित्य को संहिता, ब्राह्मण और सूत्र, इन तीन श्रेणियों में विभाजित करता है। सूत्रों का काल पर्याप्त परवर्ती है। उसके अनुसार यदि ब्राह्मण रचना काल और सूत्र निर्माण काल में ५००-६०० वर्षों का अन्तर माना जाये तो इतना ही अन्तर संहिता और ब्राह्मणों के काल में माना जा सकता है। इस प्रकार वह वेदों का रचना काल ईसा के १२०० या १५०० वर्ष पूर्व का स्वीकार करता है। मैक्समूलर के इस मत की आलोचना में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उससे भिन्न किसी अन्य पाश्चात्य विद्वान् ने इस कथन को स्वीकार नहीं किया है। बाल गंगाधर तिलक ज्योतिषीय गणना के आधार पर इस काल को ईसा के कई लाख वर्ष पूर्व सिद्ध करते हैं तो उमेशचन्द्र विद्यारत्न और अविनाशचन्द्र दास ने इस तिथि को और पीछे ले जाना स्वीकार किया है। यह बात नहीं कि मैक्समूलर वेदोत्पत्ति के काल विषयक अपनी इस उपपत्ति को लेकर पूर्ण आश्वस्त ही था। उन्हें यह भी आशा नहीं थी कि उनकी इस धारणा को वेद के अध्येता समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। अतः उन्होंने स्वयं स्वीकार किया—

"Though this date has met with very general acceptance, I am the very last person to consider it firmly established."

अर्थात् यद्यपि वेदों का यह रचनाकाल सामान्यतया मान लिया गया है, फिर भी इसे सर्वांश में सत्य स्वीकार करना मेरे लिये भी कठिन है।

इससे पूर्व कि हम मैक्समूलर की वैदिक देवताओं तथा वेद प्रतिपादित धर्म विषयक मान्यताओं की समीक्षा करें, यह लिख देना आवश्यक है कि अपने अन्य पाश्चात्य मित्रों की ही भाँति वह वेद की संज्ञा केवल ऋग्वेद को ही देता है। यजु, साम और अथर्व को वह वेद के नाम से पुकारना

अनुचित समझता है। अपने कथन के समर्थन में प्रस्तुत करने के लिये उसके पास दो ही युक्तियाँ हैं—प्रथम तो यह कि ऋग्वेद के मन्त्रों की ही सामवेद में पुनरुक्ति हुई है, यजुर्वेद के मन्त्र मात्र यज्ञयागादि में प्रयुक्त किये जाने के अतिरिक्त कोई उपयोगिता नहीं रखते तथा अथर्ववेद जादू टोने, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के टोटकों का संग्रह है—

"The other socalled Vedas contain chiefly extracts from the Rig-veda, together with sacrificial formulas, charms incantations, many of them no doubt extremely curious, but never likely to interest any one except the Sanskrit Scholar by profession."

उसने तो यह फैसला भी दे दिया कि पुरोहिताई के पेशे को अख्तियार करने वाले संस्कृत विद्वानों से भिन्न इन तीन वेदों में भला किसकी रुचि हो सकती है। मैक्समूलर के इस आक्षेप का उत्तर देने के लिये बहुत विस्तार में जाना पड़ेगा, क्योंकि वह यजुर्वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड, सामवेद प्रतिपादित उपासना तथा अथर्ववेदोक्त विज्ञान की सहज ही उपेक्षा कर जाता है।

मैक्समूलर ने वेद मन्त्रों के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें सर्वत्र वदतोव्याघात तथा असंगति दिखाई पड़ती है। कहीं तो उन्हें वेद मंत्रों में अनेक उदात्त तथा महनीय तत्व लक्षित होते हैं तो अन्यत्र वे कुछ मन्त्रों को बालिश (Childish), कठिन (Tedious) तुच्छ (Low) तथा साधारण कोटि का (Common place) कहने से विरत नहीं होते। परन्तु यह कहते हुए वे अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण या उदाहरण नहीं देते, जिससे उनकी बात को सत्य माना जा सके। अतः यही कहना होगा कि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः न तु प्रतिज्ञामात्रेण।

उनकी एतद्विषयक कुछ अन्य टिप्पणियाँ देखें—

I remind you again that the Veda contains a great deal of what is childish and foolish, though very little of what is bad and objectionable......many hymns are utterly unmeaning and insipid.

अर्थात्—"मैं आपको एक बार पुनः यह बतला दूँ कि वेद में पर्याप्त मात्रा में बचकानापन और मूर्खता के भावों का उल्लेख है। यद्यपि उसमें ऐसे तत्त्व कम हैं जो बुरे या आपत्तिजनक कहे जा सकते हैं। कई सूक्त तो नितान्त अर्थ शून्य और नीरस हैं।" यह गनीमत है कि मैक्समूलर ने वेदों में विद्यमान आपत्तिजनक अंशों की संख्या कम ही मानी, अन्यथा चारों वेदों के अंग्रेजी अनुवादक आर. टी. एच. ग्रिफिथ ने तो यहाँ तक कहा था कि कतिपय वेद मन्त्र तो इतने अश्लील और जुगुप्साजनक है कि उनका अंग्रेजी अनुवाद करना भी उन्हें अनुचित लगा और उन मन्त्रों के अर्थ उन्होंने लैटिन में लिखे।

जिस प्रकार प्रो. ए. ए. मैकडॉनल ने ऋग्वेद में आये पूषा देवता के सूक्त के तत्त्वार्थ को न समझकर वेद को गडरियों का गीत कहा, उसी भाँति मैक्समूलर भी वेदों को भेड़ चराने वालों तथा कृषकों के सीधे सादे भावों को व्यक्त करने वाले गीत कहें तो उन्हें कौन रोक सकता है—

(Simplest thoughts of Shepherds and cultivators of the Land.)

मैक्समूलर वेद के धर्म को बहुदेवतावादी मानता है न कि एकेश्वरवादी। उसके अनुसार मन्त्रों में विभिन्न नामों से भिन्न-भिन्न व्यक्त और अव्यक्त देवताओं की स्तुति गाई गई है—

The religion of Veda is polytheism, not monotheism Deities are invoked by different names, some clear and intelligible, such as अग्नि, सूर्य, ऊषा, मरुत, पृथ्वी, आपः, नदी Others such as, वरुण, मित्र, इन्द्र इत्यादि। यों तो मैक्समूलर ऋग्वेद के प्रसिद्ध मन्त्र 'एकं सद्

विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ. १/१६४/४६) में व्यक्त एकेश्वरवाद से भी सुपरिचित हैं, फिर भी अपनी ज़िद के कारण वे इस तथ्य को शब्दों की कलाबाजी के द्वारा अस्वीकार कर देते हैं। उसके इस वक्तव्य को देखिये—

I Could not even answer this question. If you were to ask it, whether the religion of the Veda was polytheistic or monotheistic. Monotheistic in the usual sense of that word, it is decidely not, though there are hymns that asserts the unity of the Divine as fearlessly as any passage of the old Testament or the New Testament or the Koran. (The Religion of the Veda p. 34).

यह स्वीकार करते हुए भी कि वेदों में ऐसे स्पष्ट एवं निर्भीक कथन मिलते हैं, जो दिव्य सत्ता (परमात्मा) की एकता का वर्णन करते हैं, यह कहना कि यह एकेश्वरवाद नहीं, क्या शब्दाडम्बर नहीं है। आश्चर्य है कि मैक्समूलर को पुराने और नये अहदनामे तथा कुरान में तो एकेश्वरवाद नजर आया, किन्तु परमात्मा की एक अद्वितीय सत्ता को सर्वत्र घोषित करने वाले वेदों में उस एक परमतत्त्व की सत्ता को देखने में संकोच करता है।

वेद में एकेश्वरवाद है या बहुदेवतावाद, इस विवाद में स्वयं को अलग अलग रख कर मैक्समूलर ने वेद के सन्दर्भ में एक नये शब्द को गढ़ा, यह था हीनोथीज्म। इस शब्द के द्वारा वह यह दिखाना चाहता था कि वेदों में न तो शुद्ध एकेश्वरवाद है और न स्पष्ट वहुदेववाद। अपितु जो वेद मन्त्र जिस देवता की स्तुति करता है, वह उस स्थान पर उसे ही सर्वोच्च घोषित कर देता है—

Worship of single Gods, each occupying for a time a supreme position.

हमारा निवेदन है कि प्रो. मैक्समूलर को इस नये शब्द को गढ़ने की आवश्यकता ही क्या थी। निश्चय ही जिन वेद मन्त्रों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं का स्तवन है, वह उस एक परमेश्वरीय सत्ता के ही विभिन्न नाम हैं जो उसकी तत् तत् विभूति, शक्ति, गुणों तथा महत्त्व के द्योतक हैं, अत: ये सभी मन्त्र प्रकारान्तर से एक परमात्म देव की ही स्तुति करते हैं। श्री अरविन्द ने अपने प्रसिद्ध लेख 'दयानन्द एण्ड वेद' में मैक्समूलर के इस नव अविष्कृत हीनोथीज्म का उपहास करते हुये वैदिक एकेश्वरवाद को निर्विवाद सिद्धान्त माना है।

वस्तुत: अन्य पाश्चात्य विद्वानों की ही भाँति मैक्समूलर ने भी वेदों का अध्ययन ऐतिहासिक और आर्य जाति की सामाजिक स्थिति का बयान करने वाले ग्रन्थ के रूप में ही किया। भारतीय दर्शन और चिन्तन में वेदों को जो उच्च स्थान प्राप्त रहा है तथा वे आर्यजाति के धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारों के जिस प्रकार आदि मूल और उत्स रहे हैं, इस सब की उपेक्षा कर यह जर्मन प्रोफेसर वेदों में राजाओं के युद्ध, मन्त्रियों या पुरोहितों की प्रतिद्वन्द्विता, युद्धों में विजय और पराजय तथा वीर गीतों को ही पाता है।

We meet occasionally with wars of Kings, with rivalries of ministers, with triumphs and defeats, with war songs and imprecations (The Veda and Zenda, Avesta p. 10).

यह वाक्य लिख कर मैक्समूलर ने उस विवाद की ओर संकेत किया है कि क्या वेद में लौकिक इतिहास और ऐतिहासिक घटनाओं का निबन्धन हुआ है। वेदों में जो ऐतिहासिक व्यक्ति, स्थान और घटनाओं के आपातत: विवरण मिलते हैं, उनके बारे में निरुक्तकार यास्क के मत को स्वीकार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह इतिहास 'अनित्य' कोटि का नहीं है, किन्तु किसी शाश्वतनियम या परिदृश्य को हृदयंगम कराने के लिये वेद ने कल्पित आख्यानों का सहारा लिया है। कारण कि यदि भारतीय परम्परा के अनुसार वेदों को अपौरुषेय

माना जाये तो उसमें अनित्य इतिहास का पाया जाना असंगत ही होगा । सायणादि मध्यकालीन भाष्यकारों का भी यही मत था, यह दूसरी बात है कि वे इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने में स्वयं ही असफल रहे हैं। स्वामी दयानन्द और उनके अनुवर्ती वेदव्याख्याताओं ने ऐसे आपातत: प्रतीत होने वाले इतिहास की सुसंगत व्याख्या की है ।

मैक्समूलर के वेदविषयक विचारों में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कालान्तर में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ा । कई विद्वानों की यह धारणा है कि महर्षि दयानन्द के वेद विषयक सुसंगत, तथ्यपूर्ण तथा परम्परानुमोदित विचारों से प्रभावित होकर ही कुछ समय बाद बाद मैक्समूलर संसार के इस आदिम ज्ञान के प्रति अधिक उदार तथा तर्कसंगत दृष्टिकोण बना सका । उसके ग्रन्थ 'India : What it can teach us ?' में भारतीय तत्त्व चिन्तन तथा वैदिक साहित्य का जो श्लाघायुक्त मूल्यांकन किया गया है वह उस विवेचन से कहीं अधिक तथ्यपूर्ण तथा आग्रहरहित है जो इस प्रोफेसर ने उस समय किया था जब वह ईसाइयत की सर्वश्रेष्ठता की आग्रहपूर्ण धारणा से ग्रस्त था ।

तथापि हमें यह लिखने में कोई संकोच नहीं है कि अनेक प्रबुद्ध भारतीय विद्वान्, धर्माचार्य तथा तत्वविदों ने मैक्समूलर के ईसाई आग्रह से युक्त मूल मनोभाव को नहीं समझा है और वे उसके अनावश्यक स्तुति पाठ में ही लगे रहे। ऐसे व्यक्तियों में अग्रगण्य थे स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने मैक्समूलर को वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषियों के समकक्ष ही नहीं रक्खा, उसे वेदान्तियों में महान् वेदान्ती बताया और उसे भारतभक्त घोषित करते हुए, उनके स्वयं के मन को पता नहीं किस हीन भावना ने जकड़ लिया जिसके कारण, वे कह बैठे—"भारत के प्रति उनके मन में जो प्रेम है, काश, उसका सौवां अंश भी मुझ में अपनी भारतभूमि के प्रति होता ।"

बात यह थी कि अपने इंग्लैण्ड प्रवास के समय स्वामी विवेकानन्द की भेंट मैक्समूलर से हुई थी और वे उस वृद्ध वेदाभ्यासी की सारस्वत साधना से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। परन्तु इसमें एक प्रच्छन्न कारण भी था। मैक्समूलर ने स्वामी विवेकानन्द के गुरु परमहंस रामकृष्ण की जीवनी और उपदेशों पर एक सुन्दर ग्रन्थ 'RamaKrishna : His Life and Teachings' लिखा था ।

वार्तालाप के एक प्रसंग में तो स्वामी विवेकानन्द ने मैक्समूलर की प्रशंसा में सीमातीत अतिशयोक्ति कर दी । उनका यह कथन युक्तिपूर्ण कथन की सीमा का अतिक्रमण कर विचारशून्य भावुकता की परिधि में प्रविष्ट होता सा प्रतीत होता है। उन्होंने कहा, "मुझे कभी कभी ऐसा अनुमान होता है कि स्वयं सायणाचार्य ने अपने भाष्य का अपने ही आप उद्धार करने के लिये मैक्समूलर के रूप में पुन: जन्म लिया है।" किन्तु विवेकानन्द की भावुकतापूर्ण बातों को शायद ही किसी ने गंभीरता से लिया है ।

सत्य तो यह है कि १९०० में दिवंगत हुए इस जर्मन प्रोफेसर को प्राच्य विद्याविद् लगभग भूल ही गये थे, क्योंकि वैदिक साहित्य विषयक उसका विवेचन उस काल के किसी अन्य पाश्चात्य विद्वान् द्वारा किये गये काम से किसी भी प्रकार उत्कृष्ट या श्रेष्ठ नहीं था । लगभग पौन शताब्दी के पश्चात् एक विवादास्पद लेखक नीरद चौधरी ने मैक्समूलर की जीवनी 'A Scholar : Extra Ordinary' लिख कर मानो उसे पुनरुज्जीवित कर दिया। आवश्यकता इस बात की है कि मैक्समूलर के प्राच्य विद्या विषयक काम का आग्रहरहित मूल्यांकन करते हुए इस तथ्य को दृष्टि से ओझल नहीं किया जावे कि प्रकृत्या वह ईसाई मत की श्रेष्ठता की अवधारणाओं को लेकर ही इस कार्य में प्रवृत्त हुआ था ।

—'रत्नाकर', ८/४२३ नन्दनवन,
चौपासनी आवासन मण्डल, जोधपुर